

खूब मनाओ होली- होली खेलने से जितना पानी खर्च होता है उतना ही स्नेह और सद्भाव का रंग चढ़ता है



उन दिनों होली दबे पांव आती थी. और फिर, सर्द सुबह की गरमागरम चाय जैसे पहली चुस्की के साथ ही शरीर में घुलने लगती हैं, वैसे ही घुलने लगती थी – घर में, गली में, मुहल्ले में, शहर में, वातावरण में.... होली की आहट, दो – तीन हफ्ते पहले से लगने लगती थी. स्कूल – कॉलेज की परीक्षाओं के दिन होते थे. स्कूल की पढ़ाई लगभग हो चुकी होती थी. बस, परीक्षाओं की तैयारी चल रही होती थी, जब होली का माहौल बनने लगता था. तब के मां – बाप भी अच्छे थे. बहुत अच्छे. परीक्षाओं की तैयारी के लिए होली का आनंद छोड़ने के लिए नहीं कहते थे. बच्चों के भावविश्व में होली की अहमियत को समझते थे. थोड़ी सी डांट – दपट जरूर होती थी, लेकिन 'होली बिठाने वालों के साथ नहीं जाना, होली नहीं खेलना..' ऐसा कोई नहीं बोलता था.

वातावरण में होली के माहौल के साथ गर्मी भी समा जाती थी. ठंडी – गर्मी के बड़े सुहावने दिन होते थे वह. होली की शुरुआत माने अंडी (अरंडी) का पेड़. जहां होली बिठाना है, वहां पर अंडी का पेड़ गाड़ना आवश्यक होता था. अंडी का पेड़ कहाँ लगा है, उसे ढूँढने से लेकर होलिका उत्सव की तैयारियां प्रारंभ होती थी. मोहल्ले की छोटी सी मंडली. होलिकाजी बिठाने का गजब का उत्साह. (हमारे जबलपुर में होलिका जी मूर्ति के रूप में विराजित रहती हैं). चंदे की छुपी हुई रसीद बुक खरीद लाना. फिर चंदा मांगने घर – घर जाना. जिन्होंने चंदा देने से मना किया, उनके घर की कौनसी लकड़ी होली की रात उठा सकते हैं, इस का मन ही मन में हिसाब बांधना. होली के दो – चार दिन पहले लाल / नीले / पीले / हरे कागजों की पताकाएँ लगाना. इस बार होली को किस पर बिठाना है, उसकी प्लानिंग करना... कितने काम होते थे, उन बच्चों की टोली को !

मुहल्ले के लगभग सभी बच्चे पताका लगाने के काम में लग जाते थे. बराबर त्रिकोण के आकार की पताकाएँ काटने का स्किल होता था. लंबी बंधी हुई रस्सी को, लेई से पताका चिपकाकर और बाद में उन पताका लगी रस्सियों को बिजली के खंबों में ऊंचाई पर बांधना... सारा मुहल्ला उन पताकाओं के कारण सजे – सजाएँ दूल्हे जैसे लगने लगता था.

उन दिनों की वो दोपहरें और शामें बड़ी हसीन होती थी. ऊर्जा से भरपूर. आनंदमयी..!

जबलपुर में होली के रंगों का और राखी का बाजार, श्रीनाथ की तलैया में लगता था. युगधर्म प्रेस के सामने वाली सड़क पर, जिसपर आजकल सेनिटरी वेयर्स की दुकाने हैं, दोनों ओर दुकाने लगती थी. उस प्लास्टिक की पिचकारी का बड़ा आकर्षण होता था. रंग भरी पिचकारी लेकर चलने से ऐसा फील आता था, मानो बंदूक या रायफल लेकर चल रहे हैं. वो चमचमाते रंग भी अजीब होते थे. जैसे दिखते, वैसे

पानी में घुलने के बाद होते नहीं थे. तोले के भाव से बिकते थे. उन दुकानों में जाकर रंग – पिचकारी खरीदने के लिए पापा को हम को परेशान कर देते थे.

होली जलने के एक दिन पहले से जबलपुर का माहौल बदलने लगता था. एक अलग ही खुमार सारे वातावरण में छा जाती थी. छोटे क्या, बड़े क्या, बूढ़े क्या... सारा जबलपुर बड़ी आत्मीयता से, जबरदस्त उत्साह से और उमंग से होली मनाता था. होली बिठाने के स्टेज की पूरी तैयारी रहती थी. ऊपर से और चारों तरफ से खुला हुआ स्टेज. बस, होलिका जी के लिए एक प्लेटफॉर्म और उसके इर्दगिर्द जमा की हुई लकड़ियां और गोबर के कंड़े.

होलिका मिट्टी और पुट्टे से बनती थी. मालवीय चौक, फवारा, तिलक भूमि तलैया आदि स्थानों पर होलिका की बड़ी प्रतिमा रहती थी. पुराने जी. एस. कॉलेज के सामने और कुछ अन्य स्थानों पर स्कर्ट – ब्लाउज में होलिका की मूर्ति होती थी, जिसके आँखों पर गाँगल रहती थी.

होली जलाने वाली रात को तो ऐसा लगता था, मानों सारा जबलपुर जग रहा है. मेरे कॉलेज के दिनों में तो मुझे याद ही नहीं की होलिका जलाने वाली रात को मैं सोया हूँ. शायद १९७३ में, जब मैं तीसरी या चौथी में था, सुभाष टॉकीज में हम सब मित्रों ने मिलकर, रात को ९ से १२ वाले शो में, मनोज कुमार की 'बेईमान' मूवी देखी थी. मुझे आज भी याद है, फिल्म का वह शो तो हाउसफुल था ही, शो के बाद, कमनिया के अंदर, फवारे पर मध्यरात्रि में भी ऐसी भीड़ थी, मानो कोई मेला लगा हो.

हर चौराहे पर लगे हुए चोंगे (लाउड स्पीकर), चोंगों पर बजने वाले होली के फड़कते गीत और उन गीतों पर थिरकते, नाचते युवा, उन युवाओं के आजूबाजूमें, खुशी से गुजरते और 'होली है.....' चिल्लाते हुए सायकल – स्कूटर से जाते हुए लोग. कई जगह हास्य कवि सम्मेलन, गधकेंचा सम्मेलन, मूर्ख सम्मेलन चलते रहते थे. उसी रात, सजी हुई बगियों में, जबलपुर के प्रमुख रास्तों पर हुलियारों की बारात निकलती थी. के. के. नायर, कुलकर्णी बंधु, रजनीकान्त त्रिवेदी... इन लोगों के कार्यक्रम चौराहों – चौराहों पर चलते रहते थे. तो कई जगह फागों के मुकाबले का रंग जमता था. पर दुर्भाग्य से यह उत्सव पुरुषों ही बन के रह गया था. उन दो – तीन दिनों में महिलाएं यदा – कदा ही सड़कों पर निकलती थी.

उन दिनों होलिका, रात्रि के अंतिम प्रहर में, जिसे हम 'ब्राह्म मुहूर्त' कहते हैं, जलाई जाती थी. रात भर शहर में घूमने वाले होलिका उत्सव के कार्यकर्ता, रात्रि तीन – साढ़े तीन बजे तक अपनी – अपनी होलिका पर पहुंच जाते थे. विधिवत पूजा कर के होलिका का दहन होता था. दहन की इस प्रक्रिया में, होलिका के हाथों में रखे हुए भक्त प्रल्हाद का महत्व रहता था. उसे दहन के समय, डंडे से उड़ाया जाता था. उस प्रल्हाद को जो कैच कर लेगा, उसी के घर पर प्रल्हाद जी, बाद में विराजमान होते थे.

होली जलने के बाद, बस दो – चार घंटे घर पर बिताकर, सभी होली खेलने निकल पड़ते थे. जबरदस्त माहौल रहता था. बच्चे पिचकारियों में रंग भरकर होली खेलते थे, तो बड़े – बुजुर्ग गुलाल और अन्य रंगों से होली खेलते थे, गले मिलते थे. जगह – जगह ढोलक की थाप पर मित्र-मंडली नाचती थी, रंग खेलती थी, आपस में मिलती थी.

उन दिनों मेरा कार्यक्रम लगभग तय रहता था. होली की रात भर जागना. पूरे जबलपुर में मित्रों के साथ घूमना. उस उमंग भरे वातावरण को अपने आप में समा लेता था. सुबह घर पर कुछ देर रहकर फिर होली खेलने निकल जाता. संघ के स्वयंसेवकों की मंडली होती थी. खूब गाना – बजाना, देशभक्ति के गीत, गुझिया खाना..... फिर दोपहर को घर में आकर, शरीर का रंग निकालने का असफल प्रयास करते हुए स्नान करना. स्नान के बाद आई के हाथों की खास पुरणपोळी, जिसमें जायफल भी डला होता था. स्वाभाविक हैं, आँखें भारी होने लगती थी. एक – दो रातों का जागरण, वो जायफल डाली हुई पुरणपोळी का भोजन और वो भरी पूरी दोपहर... सुख निद्रा जिसे कहते हैं, उसकी गहरी अनुभूति होती थी..!

किन्तु बाद में इस उत्साह को मानो ग्रहण लगा. समाज में अनेक तथाकथित पर्यावरणविद और सेक्युलर लोग निर्माण हो गए, जो बड़े आवेश के साथ ज्ञान बांटने लगे – ‘पानी के साथ होली खेलना गलत है, होली को लकड़ी के साथ जलाना गलत है, गुलाल में तो केमिकल होते हैं, इसलिए गुलाल से भी बचना चाहिए....’ लोगों को लगने लगा की होली खेलना मानो पाप है. गलत है. *किसी ने भी उन ज्ञान बांटने वालों से यह नहीं पूछा की ईद के दिन जब लाखों बकरे काटे जाते हैं और उनके मांस को धोने के लिए लाखों गेलन पानी बहाया जाता है, तब आपके थोबड़े क्यों चुप हो जाते हैं..?*

लेकिन सीधा – साधा हिन्दू समाज एक जबरदस्त ‘गिल्ट’ का शिकार बनता गया. एक मर्मांतक अपराध बोध उसे कचोटता रहा. उसने अपने बच्चों को भी होली खेलने से रोक दिया. उमंग और उत्साह का उत्सव होली, मानो मनहूसी का त्यौहार बन कर रह गया..! सन २००० के बाद के चौदह – पंद्रह वर्ष ऐसे ही अपराधबोध में गए.

पर अब नहीं. पिछले दो वर्ष कोरोना के कारण यह उत्सव कुछ फीका रहा. *लेकिन इस वर्ष पूरा देश फिर से होली खेलेगा. उसी उत्साह के साथ, उसी जोश के साथ खेलेगा. और अब इस जगे हुए हिन्दू समाज को कोई फालतू ज्ञान बांटने की हिम्मत भी नहीं करेगा.*

हां, जबलपुर होली खेलेगा. सारा देश होली खेलेगा. खूब खेलेगा..!

होली है!

✘ प्रशांत पोळ

(लेखक धार्मिक व राष्ट्रवादी विषयों पर शोधपूर्ण लेख लिखते हैं)